A Reader in Indian Philosophy

मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी सहित

राम नाथ झा

A READER
IN
INDIAN PHILOSOPHY

सांख्यदर्शन

मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पणी सहित

डॉ0 राम नाथ झा

सहायक आचार्य
विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

विद्यानिधि प्रकाशन

दिल्ली

साङ्ख्यसाहित्य

अनुपलब्ध

1.	साङ्ख्यसूत्र	कपिल
2.	षष्टितन्त्र	पञ्चशिख (जयमङ्गला टीका के आधार पर)
3.	राजवार्तिक	अज्ञात

उपलब्ध

1. **साङ्ख्यकारिका**	**ईश्वरकृष्ण**
I. साङ्ख्यकारिकाभाष्य या गौडपाद भाष्य	गौडपाद
II.. माठरवृत्ति (साङ्ख्यकारिका की टीका)	माठराचार्य
III जयमङ्गला (साङ्ख्यकारिका की टीका)	शङ्कराचार्य
IV. साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी (साङ्ख्यकारिका की टीका)	वाचस्पतिमिश्र
a. तत्त्वकौमुदीव्याख्या	भारती यति
b. तत्त्वार्णव या तत्त्वामृतप्रकाशिनी	राघवानन्दसरस्वती
c. तत्त्वचन्द्र	नारायणतीर्थ
d. कौमुदीप्रभा	स्वप्नेश्वर
e. साङ्ख्यतत्त्वविलास या साङ्ख्यवृत्तिप्रकाश या साङ्ख्यार्थसाङ्ख्यायिका	रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य
f. साङ्ख्यतत्त्वविभाकर	वंशीधरमिश्र
g. सारबोधिनी	शिवनारायणमिश्र
h. किरणावली	श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण

V.	युक्तिदीपिका(साङ्ख्यकारिका की टीका)	अज्ञात
VI.	सुवर्णसप्तति	,,
VII.	साङ्ख्यचन्द्रिका	नारायणतीर्थ
VIII.	साङ्ख्यकौमुदी	रामकृष्ण भट्टाचार्य
IX.	स्वामिनारायणभाष्य (साङ्ख्यकारिकाभाष्य)	श्रीकृष्णवल्लभाचार्य स्वामिनारायण

2. साङ्ख्यसूत्र

I.	अनिरुद्धवृत्ति	अनिरुद्ध
II.	साङ्ख्यवृत्तिसार	महादेव वेदान्ती
III.	साङ्ख्यप्रवचनभाष्य	विज्ञानभिक्षु
IV.	लघुसाङ्ख्यवृत्ति	नागेशभट्ट
IV.	साङ्ख्यतन्त्र	विश्वेश्वरदत्तमिश्र या देवतीर्थस्वामी

3. तत्त्वसमाससूत्र

I.	सर्वोपकारिणी	अज्ञात
II.	साङ्ख्यसूत्रविवरण	,,
III.	साङ्ख्यक्रमदीपिका या साङ्ख्यालङ्कार या साङ्ख्यसूत्रप्रवेशिका	,,
IV.	साङ्ख्यतत्त्वयाथार्थ्यदीपन	भावागणेश
V.	अन्वयात्मकव्याख्या (इस ग्रन्थ का कोई नाम नहीं है)	क्षेमेन्द्र दीक्षित
VI.	तत्त्वसमाससूत्रवृत्ति	अज्ञात

4.	साङ्ख्यसार	विज्ञानभिक्षु
5.	साङ्ख्यतत्त्वप्रदीप	कविराज यति
6.	साङ्ख्यार्थतत्त्वप्रदीपिका	भट्टकेशव
7.	तत्त्वमीमांसा	कृष्णमिश्र
8.	साङ्ख्यपरिभाषा	,,

आलेख
पुरुष-प्रकृति
महत्
अहङ्कार
सात्विक अहङ्कार
राजस अहङ्कार
तामस अहङ्कार
एकादशेन्द्रिय
पञ्चतन्मात्रा
मनस्
पञ्चज्ञानेन्द्रिय
पञ्चकर्मेन्द्रिय
नासिका
जिह्वा
चक्षु
त्वचा
श्रोत्र
उपस्थ
पायु
पाद
पाणि
वाक्
गन्ध
रस
रूप
स्पर्श
शब्द
पृथिवी
जल
तेजस्
वायु
आकाश
स्थूल शरीर
सूक्ष्म शरीर
महाभूत
षाट्कौशिक
अष्टादशावयवात्मक
महत्
अहङ्कार
एकादशेन्द्रिय
पञ्चतन्मात्रा

महत्
भावसर्ग
सांसिद्धिक
प्राकृतिक
वैकृतिक
प्रत्यय सर्ग
धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य
विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि
यतमान व्यतिरेक एकेन्द्रिय वशीकार
अणिमा लघिमा गरिमा महिमा प्राप्ति प्राकाम्य वशित्व ईशित्व
या कामावसायित्व
(अगले पृ० पर देखें)
1. प्रकृति सम्बन्धी तुष्टि
2. उपादान सम्बन्धी तुष्टि
3. काल सम्बन्धी तुष्टि
4. भाग्य सम्बन्धी तुष्टि
5. अदिव्य शब्द सम्बन्धी तुष्टि
6. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी तुष्टि
7. अदिव्य रूप सम्बन्धी तुष्टि
8. अदिव्य रस सम्बन्धी तुष्टि
9. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी तुष्टि
1. ऊह
2. शब्द
3. अध्ययन
4. आध्यात्मिक दुःख का नाश
5. आधिदैविक दुःख का नाश
6. आधिभौतिक दुःख का नाश
7. सुहृत्प्राप्ति
8. दान

(अगले पृ० पर देखें)

विपर्यय

तमस् या अविद्या=8	मोह या अस्मिता=8	महामोह या राग=10	तामिस्र या द्वेष=18	अन्धतामिस्र या अभिनिवेश=18
1. अव्यक्त सम्बन्धी अविद्या	1. अणिमा सम्बन्धी मोह	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी राग	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी द्वेष	1. दिव्य शब्द सम्बन्धी अभि०
2. महत् सम्बन्धी अविद्या	2. लघिमा सम्बन्धी मोह	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी राग	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी द्वेष	2. दिव्य स्पर्श सम्बन्धी अभि०
3. अहङ्कार सम्बन्धी अविद्या	3. गरिमा सम्बन्धी मोह	3. दिव्य रूप सम्बन्धी राग	3. दिव्य रूप सम्बन्धी द्वेष	3. दिव्य रूप सम्बन्धी अभि०
4. शब्द सम्बन्धी अविद्या	4. महिमा सम्बन्धी मोह	4. दिव्य रस सम्बन्धी राग	4. दिव्य रस सम्बन्धी द्वेष	4. दिव्य रस सम्बन्धी अभि०
5. स्पर्श सम्बन्धी अविद्या	5. प्राप्ति सम्बन्धी मोह	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी राग	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी द्वेष	5. दिव्य गन्ध सम्बन्धी अभि०
6. रूप सम्बन्धी अविद्या	6. प्राकाम्य सम्बन्धी मोह	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी राग	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी द्वेष	6. अदिव्य शब्द सम्बन्धी अभि०
7. रस सम्बन्धी अविद्या	7. वशित्व सम्बन्धी मोह	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी राग	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी द्वेष	7. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी अभि०
8. गन्ध सम्बन्धी अविद्या	8. ईशित्व सम्बन्धी मोह	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी राग	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी द्वेष	8. अदिव्य रूप सम्बन्धी अभि०
		9. अदिव्य रस सम्बन्धी राग	9. अदिव्य रस सम्बन्धी द्वेष	9. अदिव्य रस सम्बन्धी अभि०
		10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी राग	10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी द्वेष	10. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी अभि०
			11. अणिमा सम्बन्धी द्वेष	11. अणिमा सम्बन्धी अभि०
			12. लघिमा सम्बन्धी द्वेष	12. लघिमा सम्बन्धी अभि०
			13. गरिमा सम्बन्धी द्वेष	13. गरिमा सम्बन्धी अभि०
			14. महिमा सम्बन्धी द्वेष	14. महिमा सम्बन्धी अभि०
			15. प्राप्ति सम्बन्धी द्वेष	15. प्राप्ति सम्बन्धी अभि०
			16. प्राकाम्य सम्बन्धी द्वेष	16. प्राकाम्य सम्बन्धी अभि०
			17. वशित्व सम्बन्धी द्वेष	17. वशित्व सम्बन्धी अभि०
			18. ईशित्व सम्बन्धी द्वेष	18. ईशित्व सम्बन्धी अभि०

(पिछले पृ० का शेष)

अशक्ति

इन्द्रिय सम्बन्धी अशक्ति =11	तुष्टि विपर्यय सम्बन्धी अशक्ति=9	सिद्धि सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति=8
1. बहरापन	1. प्रकृति सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति	1. ऊह सम्बन्धी तुष्टिरूप अशक्ति
2. स्पर्शग्रहण का असामर्थ्य	2. उपादान सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति	2. शब्द " " " "
3. अन्धापन	3. काल सम्बन्धी तुष्टि "	3. अध्ययन " " " "
4. रस ग्रहण का असामर्थ्यं	4. भाग्य सम्बन्धी तुष्टि "	4. आध्यात्मिक दु:खनाश सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
5. गन्ध ग्रहण का असामर्थ्य	5. अदिव्य शब्द सम्बन्धी तुष्टि "	5. आधिदैविक " " " "
6. गूंगापन	6. अदिव्य स्पर्श सम्बन्धी तुष्टि "	6. आधिभौतिक " " " "
7. हस्त का असामर्थ्य	7. अदिव्य रूप सम्बन्धी तुष्टि "	7. सुहृत्प्राप्ति सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
8. पाद का असामर्थ्य	8. अदिव्य रस सम्बन्धी तुष्टि "	8. दान सम्बन्धी तुष्टि रूप अशक्ति
9. नपुंसकत्व	9. अदिव्य गन्ध सम्बन्धी तुष्टि "	
10. गुदा दोष		
11. मन का असामर्थ्य		

भारतीय दर्शन की शाखाओं की सूची

क्रम सं.	सिद्धान्त का नाम	प्रतिष्ठापक का नाम	प्रधान ग्रन्थ का नाम	समय
1	चार्वाक	चार्वाक । बृहस्पति	बृहस्पतिसूत्र या तत्त्वोपप्लवसिंह	अज्ञात
2	श्वेताम्बरजैन	उमास्वाती	तत्त्वार्थाधिगमसूत्र	अज्ञात
3	दिगम्बरजैन	अज्ञात	अज्ञात	"
4	वैभाषिक	कात्यायनीपुत्र	ज्ञानप्रस्थानशास्त्र	200 वि.श.
5	सौत्रान्तिक	कुमारलात	कल्पनामण्डितिका	200 ई.
6	योगाचार या विज्ञानवाद	मैत्रेयनाथ	अभिसमय्यारिका	अज्ञात
7	शून्यवाद या माध्यमिक	नागार्जुन	माध्यमिककारिका	400 ई.
8	वैशेषिक	कणाद	वैशेषिकसूत्र	400 ई. पू.
9	प्राचीनन्याय	गौतम	न्यायसूत्र	300 ई. पू.
10	नव्यन्याय	गंगेशोपाध्याय	तत्त्वचिन्तामणि	1325 ई.
11	साङ्ख्य	कपिल	साङ्ख्यसूत्र	700 ई. पू.
12	योग	पतञ्जलि	योगसूत्र	200 ई. पू.
13	भाट्टमीमांसा	कुमारिलभट्ट	श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक आदि	620-700 ई.
14	प्राभाकरमीमांसा	प्रभाकरमिश्र	लघ्वी, बृहती	650-720 ई.
15	मुरारिमीमांसा	मुरारिमिश्र	त्रिपादीनीतिनय	1150-1220 ई.
16	रसेश्वर (आयुर्वेद)	चरक	चरकसंहिता	200 ई. पू.
17	व्याकरण	भर्तृहरि	वाक्यपदीयम्	500 ई.
18	अद्वैत	शङ्कर	शारीरकभाष्य	788-820 ई
19	भेदाभेद	भास्कर	भास्करभाष्य	1000 ई.
20	विशिष्टाद्वैत	रामानुज	श्रीभाष्य	1017-1117 ई.

21	द्वैत	मध्व	पूर्णप्रज्ञभाष्य	1238–1317 ई.
22	द्वैताद्वैत	निम्बार्क	वेदान्तपारिजात	1100 ई.
23	शैवविशिष्टाद्वैत	श्रीकण्ठ	शैवभाष्य	1270 ई.
24	वीरशैवविशिष्टाद्वैत	श्रीपति	श्रीकरभाष्य	1400 ई.
25	नकुलीशपाशुपत	नकुलीश	पाशुपतसूत्र	अज्ञात
26	प्रत्यभिज्ञा	सिद्धसोमानन्द	शिवदृष्टि	900–950 वि.
27	शुद्धाद्वैत	वल्लभाचार्य	अणुभाष्य	1479–1532 ई.
28	अविभागाद्वैत	विज्ञानभिक्षु	विज्ञानामृतभाष्य	1600 ई.
29	अचिन्त्यभेदाभेद	वलदेवविद्याभूषण	गोविन्दभाष्य	1725 ई.
30	स्वरूपाद्वैत	श्रीपञ्चाननतर्करत्न-भट्टाचार्य	शक्तिभाष्य	1867–1940 ई.
31	परमार्थदर्शन	रामावतारशर्मा	परमार्थदर्शन	1877–1929 ई.

द्वितीय अध्याय

प्रमाणमीमांसा

प्रमीयतेऽनेनेति निर्वचनात् प्रमां प्रति करणत्वमवगम्यते। तच्चासन्दिग्धाविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः[1]। या चित्तवृत्तिः सा प्रमा[2]। बोधश्च पौरुषेयः फलं प्रमा, तत्साधनं प्रमाणमिति[3]। सा मुख्या प्रमेत्यर्थः[4]।

साङ्ख्यनये कश्चिदर्थः प्रमाणमेव, यथा चक्षुरादिः, 'अयं घटः' इति बौद्धप्रमाया जनकत्वात्। कश्चित् प्रमाप्रमाणोभयरूपः, यथा चित्तवृत्तिः। एषा हि चक्षुरादिजन्यत्वेन प्रमा इति पौरुषेयबोधं पुरुषनिष्ठज्ञानरूपफलप्रमां प्रति करणत्वेन च प्रमाणम् इति व्यवह्रियते। कश्चित् प्रमैव, यथा पौरुषेयबोधः। घटमहं जानामि इति पुरुषनिष्ठबोधस्य फलरूपत्वेन कस्यापि करणत्वाभावात्। कश्चित् प्रमातैव, यथा बुद्धिप्रतिबिम्बितं चैतन्यम्, बुद्धिप्रतिबिम्बितचेतनस्य प्रमाया आश्रयत्वात्। कश्चित् साक्षी एव, यथा बुद्धिवृत्त्युपहितचितिः। बुद्धिवृत्त्युपहित-शुद्धचेतनस्य साक्षिमात्रत्वादिति[5]।

प्रमेयं प्रधानं बुद्धिरहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि पुरुष इति, एतानि पञ्चविंशतितत्त्वानि[6]।

प्रमाणमीमांसा

जिसके द्वारा यथार्थज्ञान अर्थात् प्रमा की प्राप्ति होती है, वह **प्रमाण** है। इस व्युत्पत्ति के द्वारा यह ज्ञात होता है कि **प्रमाण** यथार्थ ज्ञान का करण अर्थात् **मुख्यसाधन** है। वह प्रमाण सन्देहरहित, सत्य तथा पहले से अज्ञात विषय से सम्बद्ध **चित्त** का व्यापार है। यही **गौणप्रमा** है। इस चित्त के व्यापार से पुरुष में उत्पन्न होने वाला बोध **प्रमा** है। यही **मुख्यप्रमा** है तथा ज्ञानप्रक्रिया का **फल** है। इस मुख्यप्रमा का साधन ही प्रमाणभूत गौणप्रमा है।

साङ्ख्यशास्त्र में कोई **अर्थ** केवल प्रमाण है, जैसे कि चक्षु आदि। **यह घड़ा है** इस प्रकार का चित्तव्यापाररूप प्रमा का जनक होने के कारण **चक्षु** आदि प्रमाण है। कोई प्रमा एवं प्रमाण दोनों है, जैसे **चित्तव्यापार**। यह चक्षु आदि से उत्पन्न **गौण प्रमा** है जो पुरुष में उत्पन्न होने वाले ज्ञान के प्रति करण होने से **प्रमाण** के रूप में व्यवहृत होता है। कोई केवल प्रमा है, जैसे पुरुष में उत्पन्न होने वाला **ज्ञान**। **मैं घट को जानता हूँ** यह पुरुष में उत्पन्न होने वाला बोध किसी का भी करण नहीं है, केवल प्रमा है। बुद्धि में प्रतिबिम्बित चैतन्य प्रमा का आश्रय होने के कारण केवल **प्रमाता** है। बुद्धि की वृत्ति से उपहित चैतन्य केवल **साक्षी** है। साङ्ख्य में प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत तथा पुरुष ये सभी पच्चीस तत्त्व **प्रमेय** हैं।

विसिन्वन्ति विषयिणमनुबध्नन्ति स्वेन रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्तीति यावत्, विषयाः पृथिव्यादयः सुखादयश्च । अस्मदादीनामविषयास्तन्मात्रलक्षणा योगिनामूर्ध्वस्त्रोतसां च विषयाः[7] ।

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वप्रमाणसिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि[8] ॥

एतच्च लौकिकप्रमाणाभिप्रायं, लोकव्युत्पादनार्थत्वाच्छास्त्रस्य, तस्यैवात्राधिकारात्। आर्षं तु विज्ञानं योगिनामूर्ध्वस्त्रोतसां, न लोकव्युत्पादनायालमिति सदपि नाभिहितम्, अनधिकारात्[9] ।

जो विषयी अर्थात् बुद्धि को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, अपने आकार से आकारित कर उसे उसी रूप में प्रस्तुत कर देते हैं, वे **विषय** हैं। **पृथिवी*** आदि तथा **सुख** आदि विषय हैं। हमारे ज्ञान के विषय न बनने वाले सूक्ष्म तन्मात्रा आदि भी ऊर्ध्वस्रोतस् योगियों के विषय हैं।

* पृथिवी, जल, तेजस्, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, उपस्थ, पायु, पाद, पाणि, वाक्, नासिका, जिह्वा, चक्षुस्, त्वचा, कर्ण, मनस्, अहङ्कार, बुद्धि, प्रकृति तथा पुरुष ये पच्चीस तत्त्व तथा सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, सङ्कल्प आदि विषय हैं। लेखक

साङ्ख्यशास्त्र में तीन प्रमाण हैं–दृष्ट, अनुमान तथा आप्तवचन। इन्हीं प्रमाणों में अन्य सभी प्रमाणों का समावेश है। प्रमाण से ही **प्रमेय** की सिद्धि

होती है। सामान्य लोगों के ज्ञान के लिए प्रस्तुत शास्त्र केवल लौकिक प्रमाण का निरूपण करता है, क्योंकि सामान्य लोगों की इन्हीं तीन लौकिक प्रमाणों में गति होती है। **ऊर्ध्वस्रोतस्*** योगियों का **आर्ष$** प्रमाण साधारण जनों के ज्ञान में सहायक नहीं है। आर्षविज्ञान की सत्ता होने पर भी उसका निरूपण नहीं किया गया है क्योंकि उसमें केवल ऊर्ध्वस्रोतस् योगियों की गति सम्भव है।

* **ऊर्ध्वं सांसारिकविषयेभ्यो व्यतिरिक्तं (स्वप्रकाशचिदात्मके) स्रोतः वृत्तिप्रवाहो येषाम्।** कृ. 4

सांसारिक विषयों के विपरीत चैतन्य में ही जिसके चित्त का व्यापार स्थिर हो वह ऊर्ध्वस्रोतस् है।

$आम्नायविधातृणामृषीणाम् अतीतानागतवर्तमानेष्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु ग्रन्थोपनिबद्धेष्वनुपनिबद्धेषु चात्ममनसोः संयोगाद् धर्मविशेषाच्च यत् प्रातिभं यथार्थनिवेदनं ज्ञानमुत्पद्यते तदार्षमित्याचक्षते। प्र. पा. भा. गु. आ.

वेदों की रचना करने वाले महर्षियों में विशेष प्रकार के पुण्य से आगम ग्रन्थों में कहे हुए या उनमें न कहे हुए भूत, भविष्य और वर्तमान में अतीन्द्रिय धर्म आदि विषयक एवं उनके स्वरूप का परिचायक जो प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे आर्ष कहते हैं।

दृष्टम्

प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्[10]।

विषयं विषयं प्रति वर्तते इति प्रतिविषयम्। वृत्तिश्च सन्निकर्षः। अर्थसन्निकृष्टमिन्द्रियमित्यर्थः। तस्मिन् अध्यवसायः तदाश्रित इत्यर्थः। अध्यवसायश्च बुद्धिव्यापारो ज्ञानम्।

उपात्तविषयाणामिन्द्रियाणां वृत्तौ सत्यां बुद्धेस्तमोऽभिभवे सति यः सत्त्वसमुद्रेकः सोऽध्यवसाय इति वृत्तिरिति ज्ञानमिति चाख्यायते। इदं तावत् प्रमाणम्। अनेन यश्चेतनाशक्तेरनुग्रहस्तत्फलं प्रमाबोधः[11]।

बुद्धितत्त्वं हि प्राकृतत्वादचेतनमिति तदीयोऽध्यवसायोऽप्यचेतनः, घटादिवत्। एवं हि बुद्धितत्त्वस्य सुखादयोऽपि परिणामभेदा अचेतनाः[12]।

दृष्ट

विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय पर आधारित बुद्धिव्यापार या ज्ञान **दृष्ट प्रमाण** है। घट, पट आदि प्रत्येक विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय **प्रतिविषय** है। वृत्ति या व्यापार **सन्निकर्ष** है। बुद्धि का व्यापार या परिणामरूप ज्ञान **अध्यवसाय** है।

इस प्रकार इन्द्रियों के द्वारा घट, पट आदि विषयों के आकार को बुद्धिव्यापार से प्राप्त कर लेने पर बुद्धि में तमोगुण की कमी के साथ-साथ सत्त्वगुण की अधिकता **अध्यवसाय** है। यह अध्यवसाय **वृत्ति** अथवा **ज्ञान** है तथा यही प्रमाण है। इस अध्यवसाय रूप प्रमाण का बुद्धि में प्रतिबिम्बित पुरुष के साथ सम्बन्ध **प्रमा** है तथा यही इस ज्ञानप्रक्रिया का **फल** है।

बुद्धि तत्त्व जड़ प्रकृति का परिणाम होने के कारण अचेतन है, इसलिए उसका ज्ञानरूप व्यापार या कार्य भी घट आदि के समान अचेतन है। इसी प्रकार बुद्धि के सुख, दुःख आदि विभिन्न परिणाम या कार्य भी अचेतन हैं।

पुरुषस्तु सुखाद्यननुसङ्गी चेतनः । सोऽयं बुद्धितत्त्ववर्तिना ज्ञानसुखादिना तत्प्रतिबिम्बितस्तच्छायापत्त्या ज्ञानसुखादिमानिव भवतीति चेतनोऽनुगृह्यते। चितिच्छायापत्त्या चाचेतनापि बुद्धिस्तदध्यवसायोऽप्यचेतनश्चेतनवद् भवतीति[13] ।

आलोचितमिन्द्रियेण वस्तु 'इदम्' इति सम्मुग्धम् 'इदमेवं,' 'नैवम्' इति सम्यक्कल्पयति विशेषणविशेष्यभावेन विवेचयतीति यावत्।

यदाहुः

सम्मुग्धं वस्तुमात्रं तु प्राग्गृह्णन्त्यविकल्पितम्।
तत् सामान्यविशेषाभ्यां कल्पयन्ति मनीषिणः॥

सुख, दुःख आदि से अनासक्त पुरुष **चेतन** है। पुरुष बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता हुआ उससे **तादात्म्य*** ग्रहण कर उसमें स्थित ज्ञान, सुख आदि धर्मों से युक्त सा प्रतीत होता है तथा इसी रूप में बुद्धि के द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार चेतन पुरुष के साथ तादात्म्य प्राप्त होने के कारण अचेतन बुद्धि तथा उसका अचेतन ज्ञान भी चेतन सा प्रतीत होता है।

*साङ्ख्य में सम्बन्ध दो प्रकार के हैं– संयोगसम्बन्ध और तादात्म्यसम्बन्ध।

I. कार्यकारणभावानापन्नयोः पदार्थयोः संयोगः। स्वा.भा. 3

कार्य और कारणभाव को प्राप्त नहीं करने वाले दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है। जैसे 'दण्डधारी पुरुष' में दण्ड और पुरुष ऐसे दो पदार्थों में एक पदार्थ 'दण्ड' दूसरे पदार्थ 'पुरुष' का कारण नहीं है। साथ ही 'पुरुष' भी 'दण्ड' का कार्य नहीं है। इस प्रकार कार्य-कारण भाव को अप्राप्त 'दण्ड' और 'पुरुष' के बीच का सम्बन्ध संयोगसम्बन्ध है।

II. कार्यकारणभावापन्नयोश्च तादात्म्यमिति। स्वा.भा. 3

कार्य और कारण भाव को प्राप्त हुए दो पदार्थों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य है। जैसे- महत् आदि व्यक्त और अव्यक्त प्रकृति के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध है, क्योंकि अव्यक्त प्रकृति महत् आदि व्यक्त का कारण है तथा महत् आदि व्यक्त उसका कार्य है। इस प्रकार इन दोनों पदार्थों के कार्य-कारणभाव को प्राप्त किये जाने से दोनों के बीच का सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि संयोग सम्बन्ध भेद सम्बन्ध तथा तादात्म्य सम्बन्ध अभेद सम्बन्ध है।

यहाँ 'तच्छायापत्त्या' पद में 'तत्' पद से 'बुद्धि' तत्त्व का ग्रहण होता है। उस बुद्धि की 'छाया' का अर्थ है 'अविवेक के कारण बुद्धि और पुरुष के मध्य बन्धनरूप तादात्म्य' तथा 'आपत्त्या' का अर्थ है 'बुद्धि और पुरुष में अभेद ग्रहण करने के कारण'। कि. 5

इन्द्रिय के द्वारा वस्तु का **'यह'** इस प्रकार से अस्पष्ट ज्ञान होता है। मन के द्वारा **'यह वस्तु ऐसी है, ऐसी नहीं है'** इस प्रकार के सङ्कल्प से विशेषण-विशेष्यभावरूप ज्ञान होता है जैसा कि श्रेष्ठ आचार्यों का विचार है-

चक्षु आदि व्यापार के बाद एवं मन के व्यापार से पहले निर्विकल्पक एवं भेद से रहित वस्तु मात्र का बोध होता है। विद्वान् लोग इसी को दूसरे क्षण में सामान्य एवं विशेष के द्वारा **सविकल्पक** ज्ञान के रूप में स्वीकार करते हैं।

तथाहि

अस्ति ह्यालोचनं ज्ञानं प्रथमं निर्विकल्पकम्।
बालमूकादिविज्ञानसदृशं मुग्धवस्तुजम्॥
ततः परं पुनर्वस्तुधर्मैर्जात्यादिभिर्यया॥
बुद्ध्यावसीयते सापि प्रत्यक्षत्वेन सम्मता॥

(श्लोकवार्तिकम् प्रत्यक्षखण्डम् 112, 120)[14]

चतुर्विधकरणस्यासाधारणीषु वृत्तिषु क्रमाक्रमौ सप्रकारावाह[15] –

युगपच्चतुष्टयस्य तु वृत्तिः क्रमशश्च तस्य निर्दिष्टा।
दृष्टे तथाप्यदृष्टे त्रयस्य तत्पूर्विका वृत्तिः[16] ॥

दृष्टे यथा – यदा सन्तमसान्धकारे विद्युत्सम्पातमात्राद् व्याघ्रमभिमुखमतिसन्निहितं पश्यति, तदा खल्वस्यालोचनसङ्कल्पाभिमानाध्यवसाया युगपदेव प्रादुर्भवन्ति, यतस्तत उत्प्लुत्य तत्स्थानादेकपदेऽपसरति।

जैसा कि स्पष्ट किया गया है–वस्तु मात्र का बाल, मूक आदि के समान इन्द्रिय और अर्थ के संयोग से उत्पन्न शुद्धज्ञान या आलोचन **निर्विकल्पक** है। यह **धर्मधर्मिभाव*** रहित अर्थात् भेदरहित होता है। इस ज्ञान के अनन्तर बुद्धि के द्वारा वस्तु का **सामान्य एवं विशेष#** से युक्त ज्ञान **सविकल्पक प्रत्यक्ष** है।

* **धर्मः ध्रियते तिष्ठति वर्तते यः स धर्मः।** न. न्या. भा. प्र., पृ. 2

जो वस्तु जिसमें रहता है या जिसको धारण किया जाता है वह धर्म तथा जहाँ रहता है या जो उसे धारण करता है वह धर्मी है। साङ्ख्य दर्शन के प्रत्यक्षज्ञान की प्रक्रिया में आलोचन अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के संयोग के बाद धर्म और धर्मी का भेद रहित ज्ञान होता है जो निर्विकल्पक है। यही दूसरे क्षण में भेद सहित प्रतीत होकर विशेषण–विशेष्यभाव अर्थात् धर्मधर्मिभावरूप से सविकल्पक है।

सामान्यं नाम अनुगतो धर्मः। विशेषो नाम धर्मी। सा. बो. 27, पादटिप्पणी

सामान्य से धर्म का तथा विशेष से धर्मी का ज्ञान होता है।

दृष्ट पदार्थ के विषय में बाह्येन्द्रिय एवं तीन प्रकार के अन्तःकरणों का व्यापार कभी एक साथ कभी क्रमशः होता है तथा अदृष्ट पदार्थ के विषय में तीनों अन्तःकरणों का व्यापार दृष्ट पूर्वक होता है।

दृष्ट पदार्थ के विषय में एक साथ होने वाले व्यापारों का उदाहरण :– जब घने अन्धकार में बिजली की चमक से कोई व्यक्ति बाघ को अत्यन्त समीप में स्थित देखता है, तब उसके चक्षु के द्वारा किया गया आलोचन, मनः के द्वारा किया गया सङ्कल्प, अहङ्कार के द्वारा किया गया अभिमान तथा बुद्धि के द्वारा किया गया निश्चय एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। अतएव वह व्यक्ति तत्क्षण ही उस स्थान विशेष से हट जाता है।

क्रमशच – यदा मन्दालोके प्रथमं तावद्वस्तुमात्रं सम्मुग्धमालोचयति, अथ प्रणिहितमनाः कर्णान्ताकृष्टसशरशिञ्जितमण्डलीकृतकोदण्डः प्रचण्डतरः पाटच्चरोऽयम् इति निश्चिनोति, अथ च मां प्रत्येति इत्यभिमन्यते अथाध्यवस्यति – अपसरामीतः स्थानादिति। परोक्षे त्वन्तःकरणत्रयस्य बाह्येन्द्रियवर्जं वृत्तिः[17]। अन्तःकरणत्रयस्य युगपत्क्रमेण च वृत्तिर्दृष्ट-पूर्विकेति। अनुमानागमस्मृतयो हि परोक्षेऽर्थे दर्शनपूर्वाः प्रवर्तन्ते नान्यथा। यथा दृष्टे तथादृष्टेऽपीति योजना[18]।

चतुर्णां त्रयाणां वा वृत्तयो न तावत्तन्मात्राधीनाः तेषां सदातनत्वेन वृत्तीनां सदोत्पादप्रसङ्गात्, आकस्मिकत्वे तु वृत्तिसङ्करप्रसङ्गो नियमहेतोर-भावादित्यत आह[19] -

स्वां स्वां प्रतिपद्यन्ते परस्पराकूतहेतुकां वृत्तिम्।
पुरुषार्थ एव हेतुर्न केनचित् कार्यते करणम्[20] ॥

दृष्ट पदार्थ के विषय में क्रमशः होने वाले व्यापारों का उदाहरणः- जब कोई व्यक्ति मन्द प्रकाश में वस्तु को अस्पष्ट रूप से देखता है, तब वह एकाग्र मन से विचार करता है कि यह धनुष पर बाण को चढ़ाया हुआ चोर है, पुनः यह अभिमान करता है कि वह मेरी ओर आ रहा है तथा अन्ततः यह निश्चय करता है कि यहाँ से भाग जाना उचित है।

परोक्ष या अदृष्ट के विषय में बाह्येन्द्रिय के विना ही तीनों अन्तःकरणों का व्यापार होता है। यहाँ दृष्ट ज्ञान पूर्वक तीनों अन्तःकरणों का व्यापार साथ-साथ तथा क्रमशः भी होता है। यह नियम है कि परोक्ष वस्तु का ज्ञान कराने में अनुमान, आगम तथा स्मरण दृष्टज्ञानपूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं, अन्यथा नहीं। बोध का यह क्रम दृष्ट तथा अदृष्ट में समान है।

बाह्येन्द्रिय, मन, अहङ्कार, महत् आदि चारों का और मन, अहङ्कार, महत् आदि तीनों का अपना-अपना असाधारण तथा साधारण व्यापार किसी अन्य निमित्त की अपेक्षा किये विना केवल महत् आदि करणों के अधीन नहीं होता, अपितु उसमें अन्य हेतु भी होते हैं। चारों या तीनों करणों के व्यापार इन करणों पर ही आश्रित नहीं होते, क्योंकि ऐसा होने पर इनके हमेशा अकारण रहने से इनके व्यापार भी हमेशा होते रहेगें। यदि इन व्यापारों को किसी के आश्रित न मानकर कारण रहित मानें तो किसी भी नियामक

हेतु के अभाव में इनके सङ्कर की आपत्ति उपस्थित होगी। जैसा कि कहा गया है-

ये इन्द्रियाँ परस्पर एक दूसरे के सङ्केत को समझकर अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होती हैं तथा इस प्रवृत्ति में पुरुषार्थ ही एक मात्र हेतु है, किसी और के द्वारा इनकी प्रवृत्ति सम्भव नहीं है।

अनुमानम्

तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम्[21]। लिङ्गयति गमयति लीनमर्थमिति लिङ्गम्[22]। लिङ्गं व्याप्यम्, लिङ्गिव्यापकम्। शङ्कितसमारोपितोपाधिनिराकरणेन च वस्तुस्वभावप्रतिबद्धं व्याप्यम्,

अनुमान

अनुमान लिङ्ग तथा लिङ्गी के ज्ञान पूर्वक होता है। अज्ञात अर्थ का ज्ञान कराने वाला लिङ्ग है। **लिङ्ग** का अर्थ **व्याप्य** तथा **लिङ्गी** का अर्थ **व्यापक** है। सन्दिग्ध तथा निश्चित इन दोनों **उपाधियों*** के निराकरण पूर्वक जो वस्तु के स्वभाव से सम्बद्ध हो, वह **व्याप्य** है ।

* **साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः**। त. सं. हे.

जो धर्म साध्य का व्यापक तथा साधन का अव्यापक हो, वह उपाधि है। साध्य के व्यापक होने का तात्पर्य है- जहाँ-जहाँ साध्य हो, वहाँ-वहाँ नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित हो। साधन के अव्यापक होने का तात्पर्य है- जहाँ-जहाँ साधन हो, वहाँ-वहाँ सर्वत्र नियम पूर्वक वह धर्म उपस्थित न हो। यह उपाधि दो प्रकार का है- शङ्कित अर्थात् सन्दिग्ध तथा समारोपित अर्थात् निश्चित। I. **शङ्कित उपाधि-शङ्कितः शङ्काविषयीकृतः सन्दिग्ध इति यावत्**। कि. 5 'वह काला है, मैत्री का पुत्र होने के करण'- यहाँ 'शाक परिणाम से उत्पन्न' उपाधि है, क्योंकि 'जहाँ-जहाँ कालापन है, वहाँ-वहाँ वह कालापन शाक के परिणाम से उत्पन्न है' इस स्थल पर 'शाक परिणाम से उत्पन्न' साध्य 'कालापन' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ 'कालापन' है वहाँ-वहाँ 'शाक के परिणाम से वह कालापन उत्पन्न है' नियमपूर्वक उपस्थित होता है। लेकिन 'जहाँ-जहाँ मैत्री का पुत्र है वहाँ-वहाँ शाक के परिणाम से अवश्य ही उत्पन्न है' ऐसा नहीं है। यहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' साधन 'मैत्री के पुत्र' का अव्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ 'मैत्री का पुत्र' हो, वहाँ-वहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' नियम पूर्वक हो यह निश्चित नहीं है। इस प्रकार साध्य 'कालापन' का व्यापक

तथा साधन ''मैत्री का पुत्र' का अव्यापक होने से 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' उपाधि रूप धर्म है। यहाँ 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' शङ्कित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि जहाँ पर साधनव्यापकत्व का अथवा साध्यव्यापकत्व का अथवा दोनो का सन्देह हो, वहाँ पर हेतु में संशय होने से उपाधि सन्दिग्ध होता है। यहाँ साधन 'मैत्री का पुत्र' के प्रति 'शाक के परिणाम से उत्पन्न' रूप उपाधि की अव्यापकता में सन्देह रहने से अर्थात् प्रत्यक्ष आदि से सम्बन्ध सिद्ध न होने से वह शङ्कित उपाधि है।

II.समारोपित उपाधि- समारोपितः सम्यक् वास्तविकतया आ समन्तात् रोपितः स्थापितः वास्तविकतया निश्चितः इति यावत्। कि. 5 'पर्वत धूमवाला है, आग से युक्त होने के कारण'- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधि है , क्योंकि 'जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है'- इस स्थल पर 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साध्य 'धूम' का व्यापक है, क्योंकि जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग है' नियमपूर्वक उपस्थित रहता है। लेकिन 'जहाँ-जहाँ आग है वहाँ-वहाँ गीली लकड़ी का आग के साथ निश्चित रूप से संयोग है' ऐसा नहीं है- यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' साधन 'आग' का अव्यापक है। इस प्रकार साध्य 'धूम' का व्यापक तथा साधन 'आग' का अव्यापक होने से 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' उपाधिरूप धर्म है। यहाँ 'गीली लकड़ी का आग के साथ संयोग' समारोपित अर्थात् निश्चित उपाधि का उदाहरण है, क्योंकि इसकी उपलब्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चित हो जाती है। कि. 5, तथा तर्कभाषा मुसलगाँवकर की हिन्दी व्याख्या सहित।

येन च प्रतिबद्धं तद्व्यापकम्[23]। व्याप्तिर्नाम साध्येन सह हेतोः सम्बन्धः, यश्च सामानाधिकरण्यरूप अविनाभाव इत्यादिशब्दैर्व्यवह्रतो भवति[24]। धूमादिर्व्याप्यो वह्न्यादिर्व्यापक इति यः प्रत्ययस्तत्पूर्वकम्। लिङ्गिग्रहणं चावर्तनीयम्। तेन लिङ्गमस्यास्तीति पक्षधर्मताज्ञानमपि दर्शितं भवति[25]। पर्वतो वह्निमान् धूमात् इत्यनुमितौ प्रथमं वह्निधूमयो-र्व्याप्यव्यापकत्वस्मरणरूपं व्याप्तिज्ञानम्। अनन्तरं व्याप्यस्य धूमस्य पर्वतवृत्तित्वज्ञानरूपं पक्षधर्मताज्ञानम्[26]। तथा च व्याप्यव्यापक-भावज्ञानपक्षधर्मताज्ञानपूर्वकमनुमानम्। स एव परामर्श अनुमितौ जनकः। अनुमितिस्तु पर्वतो वह्निमानिति बुद्धिवृत्तिः। वह्निमनुमिनोमीति वा पौरुषेयो बोधः, तत्करणं परामर्शोऽनुमानम्[27]। अनुमितिं प्रति व्याप्तिज्ञानं परामर्शश्च निमित्तकारणं भवति, व्याप्तिज्ञानपरामर्शयोर्बुद्धेर्वृत्त्यात्मकत्वात्,

बुद्धेर्वृत्तीनां सर्वत्र निमित्तकारणत्वम्, स्वयं बुद्धिस्तूपादानकारणमिति विवेकः[28]।

त्रिसाधनं त्र्यवयवम्[29]। पक्षहेतुदृष्टान्ता इति त्र्यवयवम्। पक्षः प्रतिज्ञापदम्। यथा-वह्निमानयं प्रदेशः साध्यवस्तूपन्यासः पक्षः[30]।

व्याप्य जिसके साथ सम्बद्ध हो वह **व्यापक** है। हेतु का साध्य के साथ सम्बन्ध **व्याप्ति** है जो सामानाधिकरण्यरूप है तथा जो अविनाभाव आदि पदों के द्वारा प्रयुक्त होता है। यहाँ धूम आदि व्याप्य एवं वह्नि आदि व्यापक हैं। व्याप्य-व्यापक-भावरूप व्याप्तिज्ञान पूर्वक ही **अनुमिति** होती है। यहाँ 'लिङ्गी' शब्द का ग्रहण पुनः अपेक्षित है। **लिङ्गी** शब्द से **'लिङ्ग यहाँ विद्यमान है'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार पक्षधर्मताज्ञान का भी ग्रहण हो जाता है। **पर्वत आगवाला है, धूम के कारण** इस अनुमिति में प्रथमतः धूम और वह्नि के व्याप्य-व्यापक-भावरूप स्मरण **व्याप्तिज्ञान** है। व्याप्यरूप धूम का पर्वत पर ज्ञान **पक्षधर्मताज्ञान** है। व्याप्य-व्यापक-भावज्ञान तथा पक्षधर्मताज्ञान पूर्वक अनुमान होता है। वही परामर्श है जो अनुमिति को उत्पन्न करता है। अनुमिति 'पर्वत आग वाला है' इस प्रकार की बुद्धि का व्यापार है। 'मैं आग का अनुमान करता हूँ' इस प्रकार बुद्धिव्यापार का चित्त में प्रतिबिम्बित चैतन्य से सम्बन्ध **प्रमा** या **पौरुषेयबोध** है। इस पौरुषेयबोध का असाधारण कारण परामर्श है तथा वही अनुमान है। बुद्धि का व्यापार सर्वत्र निमित्त कारण होता है। **व्याप्तिज्ञान** और **परामर्श** बुद्धि के व्यापार है। अतः अनुमिति में ये दोनों निमित्त कारण हैं। बुद्धि स्वयं अनुमिति का उपादान कारण है।

अनुमान प्रक्रिया में तीन अवयव साधन हैं- पक्ष, हेतु तथा दृष्टान्त। **पक्ष** का अर्थ **प्रतिज्ञा** है, जैसे **यह प्रदेश वह्निमान् है** अर्थात् जिसमें साध्य वस्तु का प्रतिपादन किया जाय वह **पक्ष** है।

त्रिरूपो हेतुः त्रैरूप्यं पुनः पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे चासत्त्वमिति। अत्रोदाहरणं यथा धूमवत्त्वादिति[31]। सामान्यतो लक्षितमनुमानं विशेषतस्त्रिविधम् - पूर्ववत्, शेषवत्, सामान्यतोदृष्टञ्चेति। तत्र प्रथमं तावद् द्विविधम् - वीतमवीतं च। 1. अन्वयमुखेन प्रवर्तमानं विधायकं वीतम्। 2. व्यतिरेकमुखेन प्रवर्तमानं निषेधकम् अवीतम्। तत्रावीतं शेषवत्। शिष्यते

परिशिष्यते इति शेषः, स एव विषयतया यस्यास्त्यनुमानज्ञानस्य तत् शेषवत्। 1. वीतं द्वेधा - पूर्ववत् सामान्यतोदृष्टं च। तत्रैकं दृष्टस्वलक्षण-सामान्यविषयं यत् तत् पूर्ववत्, पूर्वं प्रसिद्धं दृष्टस्वलक्षणसामान्यमिति यावत्। तदस्य विषयत्वेनास्त्यनुमानज्ञानस्येति पूर्ववत्। यथा - धूमाद्वह्नित्व-सामान्यविशेषः पर्वतेऽनुमीयते, तस्य च वह्नित्वसामान्यविशेषस्य स्वलक्षणं वह्निविशेषो दृष्टो रसवत्याम्। अपरं च वीतं सामान्यतोदृष्टम् अदृष्टस्वलक्षणसामान्यविषयम्[32]

हेतु तीन प्रकार का है-पर्वत आदि पक्ष में भाव, रसोई आदि सपक्ष में भाव, झील आदि विपक्ष में अभाव। उपर्युक्त उदाहरण '**पर्वत आगवाला है, धूम से युक्त होने के कारण**' में धूम हेतु है।

अनुमान तीन प्रकार के हैं- पूर्ववत्, शेषवत् तथा सामान्यतोदृष्ट।

प्रथमतः अनुमान के दो भेद हैं-वीत एवं अवीत। अन्वय व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर वह्नि आदि व्यापक की पर्वत आदि पक्ष में सत्ता सिद्ध करने वाला अनुमान **वीत** है। व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा प्रवृत्त होकर व्यापक के निषेध द्वारा व्याप्य का पक्ष में निषेध करने वाला अनुमान **अवीत** है। अवीत का दूसरा नाम **शेषवत्** है। जो बच जाय वह शेष है। वही जिस अनुमानरूप ज्ञान का विषय हो वह **शेषवत्** अनुमान है।

वीत अनुमान दो प्रकार का है- पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट। **पूर्ववत्** अनुमान वह है जिसका विषय वस्तु का सामान्यरूप होता है तथा जिसका विशिष्ट रूप पहले दृष्ट रहता है। 'पूर्व' का अर्थ है प्रसिद्ध अर्थात् वस्तु का सामान्यरूप, जिसके विशिष्टरूप का पहले प्रत्यक्ष हो चुका है। ऐसा 'सामान्य' जिस अनुमान का विषय हो, वह **पूर्ववत्** अनुमान है, जैसे धूम के द्वारा 'वह्नित्व' रूप सामान्य धर्म से युक्त विशेषरूप अर्थात् पर्वत पर स्थित वह्नि का अनुमान होना, जिसका वह्निविशेषरूप रसोई में पहले देखा जा चुका है।

सामान्यतोदृष्ट नामक दूसरे प्रकार के वीत अनुमान का विषय ऐसी सामान्य वस्तु है, जिसका अपना असाधारण या विशिष्टरूप पहले न देखा गया हो।

यथेन्द्रियविषयकमनुमानम्। अत्र हि रूपादिविज्ञानानां क्रियात्वेन करणवत्त्वमनुमीयते[33] ।

सामान्यतस्तु दृष्टादतीन्द्रियाणां प्रतीतिरनुमानात्[34]।

अत्र प्रधानपुरुषावतीन्द्रियौ तयोः सामान्यतोदृष्टादनुमानात् सिद्धिः। यस्मान्महदादिलिङ्गं त्रिगुणं दृष्ट्वा कार्यं, तत्कारणमदृष्टमप्यस्ति त्रिगुणं चेति साध्यते प्रधानम्, न ह्यसतः सदुत्पत्तिः स्यादिति, न च कारणासदृशं कार्यं स्यादिति। व्यक्तं तु प्रत्यक्षेणैव साधितमिति तदर्थे न प्रयत्नः। यस्माज्जडमपि प्रधानं प्रसूतिक्रियायां प्रवर्तते तस्मादस्ति लोहस्य चलनक्रियाशक्तिहेतुचुम्बकवदवश्यं पुरुष इति ज्ञसिद्धिः[35]। यद्यपि करणत्वसामान्यस्य छिदादौ वास्यादिस्वलक्षणमुपलब्धम्, तथापि यज्जातीयस्य रूपादिज्ञाने करणत्वमनुमीयते तज्जातीयस्य करणस्य न दृष्टं स्वलक्षणं प्रत्यक्षेण, इन्द्रियजातीयं हि तत्करणम्। न चेन्द्रियत्वसामान्यस्य स्वलक्षणमिन्द्रियविशेषः प्रत्यक्षगोचरोऽर्वाग्दृशाम्, यथा वह्नित्वसामान्यस्य स्वलक्षणं वह्निः। सोऽयं पूर्ववतः सामान्यतोदृष्टात् सत्यपि वीतत्वेन तुल्यत्वे विशेषः[36]।

जैसे इन्द्रियविषयक अनुमान। रूप, रस आदि का विज्ञान जिस क्रिया के द्वारा होता है उस का असाधारण कारण होने से इन्द्रिय का अनुमान होता है। अतीन्द्रिय पदार्थों की सिद्धि भी सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। प्रधान तथा पुरुष अतीन्द्रिय पदार्थ हैं। उनकी सिद्धि भी सामान्यतोदृष्ट अनुमान से होती है। महत् आदि कार्य को त्रिगुणात्मक देखकर उसका अदृष्ट कारण प्रधान भी त्रिगुणात्मक है यह सिद्ध होता है, क्योंकि असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं होती, और न कारण से भिन्न कार्य होते। स्थूल विषय की सिद्धि तो प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा ही होती है। इसलिये यहाँ उसके लिये प्रयास करने की आवश्यक्ता नहीं है। जड़ होता हुआ भी प्रधान आविर्भाव में प्रवृत्त होता है, अतः लोहे की चलन क्रिया शक्ति में कारणरूप चुम्बक के समान जड़ प्रधान की आविर्भावरूपक्रिया के प्रवर्तक पुरुष की सिद्धि होती है। यद्यपि छेदन आदि क्रिया स्थल में करणत्व सामान्य का अपना विशिष्ट प्रकार कुठार आदि पहले से दृष्ट हुआ रहता है। लेकिन रूप, रस आदि के ज्ञान के विषय में जिस प्रकार के करण का अनुमान होता है उसका अपना विशिष्ट रूप कभी भी दृष्ट नहीं हुआ करता, क्योंकि वह करण इन्द्रियत्व विशिष्ट है और इन्द्रियत्व सामान्य का अपना विशिष्टरूप सामान्य व्यक्ति

को कभी दृष्ट नहीं होता। इसके विपरीत 'वह्नित्व' सामान्य का विशिष्टरूप (रसोई में स्थित वह्नि) दृष्ट होता है। वीत अनुमान के दोनों भेद पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट में यही अन्तर है।

आप्तवचनम्

आप्तश्रुतिः आप्तवचनं तु[37]।

प्रयोजकवृद्धशब्दश्रवणसमनन्तरं प्रयोज्यवृद्धप्रवृत्तिहेतुज्ञानानुमानपूर्वकत्वाच्छब्दार्थसम्बन्धग्रहणस्य, स्वार्थसम्बन्धज्ञानसहकारिणश्च शब्दस्यार्थ-प्रत्यायकत्वादनुमानपूर्वकत्वमित्यनुमानानन्तरं शब्दं लक्षयति। आप्ता प्राप्ता युक्तेति यावत्। आप्ता चासौ श्रुतिश्चेति आप्तश्रुतिः। श्रुतिः वाक्यजनितं वाक्यार्थज्ञानम्,[38] शब्दप्रमाणम्[39]। अत्र च यदा शब्दस्य प्रमाणत्वं तदा शाब्दबोधात्मिकाया बुद्धिवृत्तेः प्रमात्वम्, यदि च शाब्दबोधात्मकवृत्तेः प्रमाणत्वं तदा वृत्तिप्रतिबिम्बितचैतन्यस्य प्रमात्वमिति[40]। तच्च स्वतः-प्रमाणम्[41]। वाक्यजन्यं ज्ञानं हि द्विविधं स्वतःप्रमाणं परतःप्रमाणं च। तत्र अन्यप्रमाणनिरपेक्षस्वार्थबोधनसमर्थं स्वतःप्रमाणम्।

आप्तवचन

आप्तपुरुष से उच्चरित वाक्य द्वारा उत्पन्न यथार्थ ज्ञान **आप्तवचनरूप प्रमाण** है। जब कोई प्रेरक व्युत्पन्न व्यक्ति किसी व्युत्पन्न शिष्य को कार्य विशेष का आदेश करने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है और व्युत्पन्न शिष्य तदनुकूल प्रवृत्त होता है तब समीपस्थ अव्युत्पन्न बालक सर्वप्रथम गाय को लाने आदि के विषय में होने वाली प्रवृत्ति के कारणभूत ज्ञान का अनुमान करके फिर शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न होने वाले ज्ञान की शब्दजन्यता का अनुमान करता है, जिससे उसे शब्द और उसके अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। शब्द और अर्थ के इस सम्बन्ध का ज्ञान होने पर ही शब्द अपने अर्थ की प्रतीति कराता है। इस प्रकार शब्दज्ञान का अनुमानपूर्वक होना सिद्ध है। **आप्त** शब्द का अर्थ **प्राप्त या युक्त** है। **आप्तश्रुति** का अर्थ है आप्तरूप **श्रुति***। वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थज्ञान **श्रुति** है। वह वाक्यार्थज्ञान स्वतन्त्ररूप से प्रमाण है तथा वही शब्दप्रमाण है। जब शब्द प्रमाण है तब शब्द से उत्पन्न ज्ञानरूप बुद्धिव्यापार **प्रमा** है और जब

शब्द से उत्पन्न ज्ञानरूप बुद्धिव्यापार प्रमाण है तब बुद्धि के व्यापार में प्रतिबिम्बित चैतन्य **प्रमा** है।

*** श्रूयते इति श्रुतिः श्रोत्रग्राह्यं वाक्यमिति वाच्योऽर्थः, तज्जन्यं ज्ञानमिति लाक्षणिकोऽर्थ इति।** कि. 5

इस व्युत्पत्ति के आधार पर श्रोत्रग्राह्य शब्दात्मक वाक्य ही श्रुति का वाच्यार्थ है तथा वाक्य से उत्पन्न वाक्यार्थज्ञान उसका लक्ष्यार्थ है।

वाक्यजन्य ज्ञान स्वतः प्रमाण एवं परतः प्रमाण के भेद से दो प्रकार का है। जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा न हो तथा जो अपने अर्थ बोध में स्वयं समर्थ हो वह **स्वतःप्रमाण** है।

तच्च आम्नायवाक्यजन्यम्। यच्चप्रमाणान्तरसापेक्षस्वार्थबोधनसमर्थं तत् परतःप्रमाणं च।

तच्च आम्नायरूपमूलप्रमाणसापेक्षस्मृत्यादिवाक्यजन्यम्[42]। अपौरुषेय-वेदवाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशङ्काविनिर्मुक्तेर्युक्तं भवति। एवं वेदमूलस्मृतीतिहासपुराणवाक्यजनितमपि ज्ञानं युक्तं भवति। आदिविदुषश्च कपिलस्य कल्पादौ कल्पान्तराधीतश्रुतिस्मरणसम्भवः, सुप्तप्रबुद्धस्येव पूर्वेद्युरवगतानामर्थानामपरेद्युः[43]। तु शब्देनानुमानाद् व्यवच्छिनत्ति। वाक्यार्थो हि प्रमेयो न तु तद्धर्मो वाक्यम्, येन तत्र लिङ्गं भवेत्। न च वाक्यं वाक्यार्थं बोधयत् सम्बन्धग्रहणमपेक्षते, अभिनवकविविरचितस्य वाक्यस्यादृष्टपूर्वस्याननुभूतचरवाक्यार्थबोधकत्वादिति[44]। पदज्ञानं करणम्, पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापारः, वाक्यार्थसंसर्गविषयकबोधः फलमिति[45]।

वह स्वतः प्रमाण वेदवाक्यजन्य है। जिसको अन्य प्रमाणों की अपेक्षा हो तथा उन प्रमाणों की सहायता से जो अपने अर्थबोध में समर्थ हो वह **परतः प्रमाण** है। परतः प्रमाण वेदवाक्यों के आधार पर निर्मित स्मृति आदि के वाक्यों से उत्पन्न होता है। अपौरुषेय वेद वाक्यों से उत्पन्न तथा संशय, विपर्यय आदि समस्त पुरुषदोषों से रहित ज्ञान स्वतः प्रामाणिक होता है। इसी प्रकार वेद को आधार बनाकर लिखे गये स्मृति, इतिहास और पुराणों के वाक्यों से उत्पन्न ज्ञान भी प्रामाणिक होता है। प्रथम ज्ञानी **कपिल*** के द्वारा **पूर्वकल्प#** में अध्ययन किये गये वेद का इस कल्प के आरम्भ में स्मरण होना सम्भव है, जैसे कि सोकर उठे हुए पुरुष के द्वारा पूर्व अवगत विषयों

का दूसरे दिन स्मरण होना सम्भव है। साङ्ख्यकारिका की पाँचवीं कारिका में प्रयुक्त 'तु' पद आगम प्रमाण को अनुमान से पृथक् करता है। वाक्यार्थ प्रमेय होता है, वाक्य उसका धर्म नहीं होता, जिससे वहाँ उसका लिङ्ग हो सके। वाक्य वाक्यार्थ का बोध कराता हुआ व्याप्तिज्ञान की अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि नवीन कवि द्वारा रचित पहले कभी नहीं सुना गया वाक्य सर्वथा नूतन अर्थ का ज्ञान कराता है ऐसा देखा जाता है।

* कपिल साङ्ख्य शास्त्र के आदि प्रवर्तक हैं।

भारतीय काल गणना के अनुसार ब्रह्मा का एक दिन 'कल्प' कहलाता है। ऐसे तीस कल्पों को मिलाकर ब्रह्मा का एक मास होता है। ये तीस कल्प इस प्रकार हैं- 1. श्वेतवाराह 2. नीललोहित 3. वामदेव 4. गाथान्तर 5. रौरव 6. प्राण 7. बृहत्कल्प 8. कन्दर्प 9. सत्य 10. ईशान 11. ध्यान 12. सारस्वत 13. उदान 14. गरुड़ 15. कौर्म्म (यह ब्रह्म का पौर्णमास या पूर्णिमा है) 16. नारसिंह 17. समाधि 18. आग्नेय 19. विष्णुज 20. सौर 21. सोमकल्प 22. भावन 23. सुप्तमाली 24. वैकुण्ठ 25. आर्च्चिष 26. वल्मीकल्प 27. वैराज 28. गौरीकल्प 29. माहेश्वर 30. पितृकल्प (यह ब्रह्मा की अमावास्या है।) वर्तमान कल्प श्वेतवाराह है। (श. क. द्रु.)

शाब्दबोधप्रक्रिया में **पदज्ञान करण** है। पद से उत्पन्न होने वाले पदार्थ का **स्मरण व्यापार** है। वाक्य के अन्तर्गत पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न **ज्ञान फल** है।

प्रसिद्धलक्षणागुणयोगात्तिस्त्रः शब्दवृत्तयः[46]। पदपदार्थयोः सम्बन्धः[47]। सा च शक्तिः व्यक्त्यभिन्नजातौ तिष्ठति - यथा गोपदस्य गवाभिन्नगोत्वे इति[48]। शक्यसम्बन्धो लक्षणा[49]। तत्र लक्षणात्रैविध्यम्। जहल्लक्षणा-जहल्लक्षणाजहदजहल्लक्षणा चेत्यादि[50]। यथा- जहल्लक्षणा 'गङ्गायां घोष' इत्यत्र गङ्गापदे शक्यसम्बन्धितीरबोधजनिका। अजहल्लक्षणा शक्यलक्ष्योभयबोधजनिका, यथा- 'छत्रिणो यान्ति' इत्यत्र छत्रिपदस्यैक-सार्थवाहित्वे लक्षणा। जहदजहल्लक्षणा शक्यतावच्छेदकपरित्यागेन व्यक्तिमात्रबोधिका,

शब्द की तीन वृत्तियाँ हैं- **प्रसिद्धवृत्ति, लक्षणावृत्ति तथा गुणवृत्ति।** पद और पदार्थ का सम्बन्ध **वृत्ति** है। **प्रसिद्ध#** नामक पद की शक्ति व्यक्ति से अभिन्न उसकी जाति में रहती है, जैसे 'गो' पद की शक्ति 'गो' अर्थ से

अभिन्न उसकी गोत्वजाति में स्थित है। **शक्य$** का सम्बन्ध **लक्षणा** है। **लक्षणावृत्ति** तीन प्रकार की होती है- जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा तथा जहदजहल्लक्षणा। **जहल्लक्षणा**- 'गङ्गा में गाँव है'- यहाँ गङ्गा पद में शक्य 'जलप्रवाह' से सम्बद्ध तट का ज्ञान कराने वाली शक्ति **जहल्लक्ष्णा** है। **अजहल्लक्षणा**- शक्य और लक्ष्य दोनों का बोध कराने वाली शक्ति अजहल्लक्षणा है - जैसे 'छत्रधारी पुरुष जाते हैं' यहाँ शक्य छत्रधारी व्यापारियों के प्रधान के साथ लक्ष्य अन्य व्यापारियों का ज्ञान **अजहल्लक्षणा** से होता है। **जहदजल्लक्षणा**- शक्यता के **अवच्छेदक&** को छोड़कर व्यक्ति मात्र का ज्ञान कराने वाली शक्ति **जहदजल्लक्षणा** है

 # पदपदार्थयोः सम्बन्धः शक्तिलक्षणान्यतररूपः। स्वा. भा. 5

तत्रापि प्रसिद्धिलक्षणागुणयोगात्तिस्रः शब्दवृत्तयः। मा. वृ. 5

पद की स्वाभाविक शक्ति अभिधा है। विद्वान् इसे प्रसिद्ध, शक्ति आदि नामों से प्रयुक्त करते हैं। माठरवृत्ति में 'प्रसिद्ध' तथा स्वामिनारायण भाष्य में 'शक्ति' के नाम से इसका प्रयोग हुआ है।

$ पद में स्थित शक्ति का विषय शक्य है। यहाँ शक्य का तात्पर्य अभिधेय अर्थ से है। इसी प्रकार लक्षणा का विषय लक्ष्य है। लेखक

& अन्यून-अनतिरिक्त-धर्मत्वम् अवच्छेदकत्वम्। अवच्छेदक पदार्थ में रहनेवाला वह धर्म है जो उसके स्वरूप को यथावत् प्रस्तुत करता है, न कम और न अधिक। जैसे घट में रहने वाला नित्य धर्म 'घटत्व' अवच्छेदक है, क्योंकि वह उसके वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करता है, उसके अस्तित्व का परिचायक है। अवच्छेदक चार हैं- धर्म, सम्बन्ध, देश और काल। इन अवच्छेदकों के द्वारा पदार्थ का आहृत धर्म अवच्छिन्न होता है। यहाँ काल को अवच्छेदक के रूप में प्रयुक्त किया गया है। आहृत धर्म किसी भी पदार्थ का तात्कालिक एवं परिवर्तनशील धर्म है जो परिस्थिति के अनुसार उपस्थित होकर उसके स्वरूप को प्रभावित करता है। यहाँ पुरुष शक्य है तथा उसमें उपस्थित तात्कालिक धर्म शक्यता आहृत धर्म है, जो अवच्छेदक काल के द्वारा अवच्छिन्न है। (न. न्या. भा. प्र. उज्वला झा द्वारा आङ्ग्लानुवादसहित)

यथा- 'सोऽयं पुरुष' इत्यत्र तत्कालावच्छिन्नत्वादिपरित्यागेन पुरुषमात्रबोधिका[51]। तात्पर्यानुपपत्तिरन्वयानुपपत्तिश्च लक्षणाबीजं भवति[52]। गौणी द्विविधा – यथा इदमादिपदभिन्नविशेष्यवाचकपद-समानविभक्तिकपदनिरूपिता 'सिंहो माणवक' इत्यत्र सिंहसादृश्यबोधिका,

द्वितीया तु इदमादिपदविशेष्यवाचकपदसमानविभक्तिकपदनिरूपिता[53] यथा- 'सिंहोऽयम्' इत्यत्र सिंहसदृशबोधिका[54]।

पदं चतुर्विधम् – योगिकं, रूढं, योगरूढं यौगिकरूढञ्चेति। तत्रावयवार्थबोधजनकं यौगिकं- यथा पाचकादिपदम्।

जैसे- 'वह यह पुरुष है' – यहाँ तत्काल एवं एतत्काल शक्यता के अवच्छेदक हैं। तत्काल एवं एतत्काल से अवच्छिन्न शक्यतावाची 'वह' और 'यह' इन दोनों पदों के अर्थों को छोड़कर केवल लक्ष्य अर्थ 'पुरुष' का ज्ञान **जहदजहल्लक्षणा** से होता है। तात्पर्य की अनुपपत्ति एवं अन्वय की अनुपपत्ति दोनों मिलकर लक्षणा का कारण अर्थात् बीज होता है। **गौणी*** दो प्रकार की होती है। **प्रथम प्रकार की गौणी** – जैसे 'बालक सिंह है' यहाँ 'इदम्' पद का विशेष्य रूप में प्रयोग नहीं किया गया है। विशेष्य रूप में 'बालक' पद का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार विशेष्य वाचक पद 'बालक' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंह' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है। **द्वितीय प्रकार की गौणी**- 'यह सिंह है' – यहाँ 'इदम्' पद का प्रयोग विशेष्य रूप में किया गया है। इस विशेष्य वाचक पद 'इदम्' की विभक्ति के समान विभक्ति वाला 'सिंहः' पद है। इस 'सिंह' पद से 'सिंह के सादृश्य' का ज्ञान गौणी से होता है।

*माठरवृत्ति में गौणी का पद की तीसरी वृत्ति के रूप में प्रयोग हुआ है, जबकि स्वमिनारायण भाष्य में इसे लक्षणा के अन्तर्गत समाहित कर दिया गया है। लेखक

पद चार प्रकार के हैं – यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ एवं यौगिकरूढ़। पद के **अवयवों**# का अर्थबोध कराने वाला **यौगिक** है, जैसे- पाचक आदि।

यहाँ अवयव से तात्पर्य किसी पद में रहने वाले उसके धातु, प्रत्यय आदि से है। इन अवयवों में प्रत्येक की अपनी-अपनी शक्ति होती है। ये अवयव मिलकर पद के अर्थ को निश्चित करते हैं। इन अवयवों के द्वारा जब किसी पद के अर्थ का निश्चय होता है तो वह यौगिक कहलाता है। जैसे 'पाचक' पद में 'पच्' धातु 'पकाना' और 'अक' प्रत्यय 'क्रिया का कर्ता पकानेवाला' अर्थ निश्चित करते हैं। यौगिक कृदन्त, तद्धित और समस्तपद होते हैं। लेखक

यत्रावयवशक्तिनिरपेक्षया समुदायशक्त्यैव बोधो भवति तद् रूढम्

-यथा गोमण्डपादिपदम्। यत्रावयवशक्तिविषये समुदायशक्तिरप्यस्ति तद् योगरूढं यथा- पङ्कजादिपदम्, अवयवशक्त्या पङ्कजनिकर्तृत्वरूपमर्थं बोधयति, समुदायशक्त्या च पद्मत्वेन रूपेण पद्मं बोधयतीति। यत्र यौगिकार्थरूढ्यर्थयोः स्वातन्त्र्येण बोधस्तद् यौगिकरूढम्- यथा उद्भिदादिपदम्। तत्र हि उद्भेदनकर्ता तरुगुल्मादिः, यागविशेषोऽपि च बुद्ध्यते[55]।

शाब्दबोधे तु – 'आसत्तिज्ञानमाकाङ्क्षाज्ञानं योग्यताज्ञानं तात्पर्यज्ञानञ्च कारणम्।

जहाँ **अवयवशक्ति** की अपेक्षा के विना **समुदायशक्ति**# के द्वारा अर्थ बोध होता है वह **रूढ़** है, जैसे- गो, मण्डप आदि। जहाँ अवयवशक्ति तथा समुदायशक्ति दोनों के द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है, वह **योगरूढ़** है, जैसे- पङ्कज आदि। यहाँ अवयवशक्ति से पङ्क के कर्तृत्व का ज्ञान होता है तथा समुदायशक्ति से कमल का ज्ञान होता है। जहाँ यौगिक और रूढ़ दोनों अर्थों का स्वतन्त्रतापूर्वक बोध होता है, वह **यौगिकरूढ़** है, जैसे- उद्भिद् आदि। यहाँ उद्भेदन (उगने की क्रिया) का कर्ता वृक्ष, झाड़ी आदि यौगिक अर्थ तथा 'उद्भिद्' याग विशेष रूढ़ अर्थ है। प्रथम अर्थ का ज्ञान अवयवशक्ति तथा दूसरे अर्थ का ज्ञान समुदायशक्ति से होता है।

जहाँ पद मात्र के द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक अर्थ का निर्धारण हो, पद के अवयवों की अपेक्षा न हो, वह समुदायशक्ति हैं। जैसे- 'गो' पद के अवयवों के द्वारा निर्धारित 'गमनशील पदार्थ' स्वीकार्य नहीं है। समुदाय के द्वारा निर्धारित अर्थ 'गाय' स्वीकार्य है। इसी प्रकार 'मण्डप' पद के द्वारा अवयवों के आधार पर 'जो माँड पीता है वह मण्डप है' ऐसा अर्थ निर्धारित होता है जो अभिप्रेत नहीं है। 'मण्डप' समुदाय मात्र से निर्धारित अर्थ 'किसी शुभकार्य के निमित्त बना हुआ घर' अभिप्रेत है।

जहाँ पद के प्रत्येक अवयव (प्रकृति-प्रत्यय आदि) का अलग-अलग अर्थ हो तथा उनके सम्मिलित रूप से अर्थ का निर्धारण हो वह 'अवयवशक्ति' है। अवयवशक्ति 'यौगिक' का तथा समुदायशक्ति रूढ़ का कारक है।

शाब्दबोध की प्रक्रिया में आसत्तिज्ञान, आकाङ्क्षाज्ञान, योग्यताज्ञान और तात्पर्यज्ञान कारण है।

अन्वयप्रतियोग्यनुयोगिपदयोरव्यवधानेनोपस्थितिः आसत्तिः, तज्ज्ञानं

कारणम्, तेन प्रहरे प्रहरेऽसहोच्चारितानि 'गामानय' इत्यादिवाक्यानि न प्रमाणम्, आसत्त्यभावात्। यत्पदस्य यत्पदाभावप्रयुक्तमन्वयबोधाजनकत्वं तत्पदसमभिव्याहृततत्पदत्वम् आकाङ्क्षा, कारकपदस्य क्रियापदं विनान्वयबोधकत्वाभावात् कारकपदसमभिव्याहृतक्रियापदत्वमाकाङ्क्षा तज्ज्ञानविरहाच्च 'गौरश्वः पुरुषो हस्ती' इतिवाक्यं न प्रमाणम्। एकपदार्थेऽपरपदार्थसम्बन्धो योग्यता। तज्ज्ञानविरहाद् 'वह्निना सिञ्चति' इति वाक्यं न प्रमाणम्। वाक्योच्चारयितुर्यादृशार्थबोधेच्छया वाक्योच्चारणं भवति तादृशीच्छा तात्पर्यम्। तज्ज्ञानाभावाच्च 'सैन्धवमानय' इत्यत्र क्वचिदश्वस्य क्वचिल्लवणस्य वा बोधो न स्यात्[56]।

तस्मादपि चासिद्धं परोक्षमाप्तागमात्सिद्धम्[57]।

महदाद्यारम्भक्रमे स्वर्गापूर्वदेवतादौ च, तत्र तेषामभावः प्राप्तः[58]। तथा च सामान्यतोदृष्टानुमानात् शेषवदनुमानाच्च यदतीन्द्रियं न सिद्ध्यति तत्र आगमप्रमाणमनुसन्धेयमिति भावः[59]।

सम्बन्ध के अनुयोगिन् और **प्रतियोगिन्*** पदों का बाधा रहित होकर उपस्थित होना **आसत्ति** है। उसका ज्ञान शाब्दबोध का कारण है। भिन्न-भिन्न समय में एक साथ उच्चरित न होने वाले 'गाय को' एवं 'ले आओ' पदों से बने हुए 'गाय को ले आओ' आदि वाक्य प्रमाण नहीं है, क्योंकि यहाँ आसत्ति का अभाव है । जो पद जिस पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता उस पद के द्वारा साहचर्य भाव से उस पद को उपस्थित करना **आकाङ्क्षा** है। जैसे कारक पद क्रिया पद के विना सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न नहीं करता, अतः सम्बन्ध का ज्ञान उत्पन्न करने के लिए कारक पद के द्वारा साहचर्य भाव से क्रिया पद को उपस्थित करना **आकाङ्क्षा** है। 'गाय, घोड़ा, पुरुष, हाथी' आदि वाक्यों में कारक पद गाय, घोड़ा, आदि का क्रियापद से सम्बद्ध नहीं होने से वाक्य ज्ञान नहीं होता। अतः ऐसे वाक्य आकाङ्क्षाज्ञान के अभाव के कारण प्रमाण नहीं हैं। एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ का सम्बन्ध **योग्यता** है। इस ज्ञान के अभाव में 'आग से सींचता है' यह वाक्य प्रमाण नहीं है। वक्ता के द्वारा जिस प्रकार के अर्थज्ञान की इच्छा से वाक्यों का उच्चारण होता है, वैसी इच्छा **तात्पर्य** है। तात्पर्यज्ञान के अभाव में 'सैन्धव लाओ' इस वाक्य में कहीं 'घोड़ा' और कहीं 'नमक' का ज्ञान नहीं हो सकेगा।

दृष्ट एवं अनुमान (सामान्यतोदृष्ट तथा शेषवत्) प्रमाणों से जिन तत्त्वों की सिद्धि न हो ऐसे अतीन्द्रिय परोक्षतत्त्व महत् आदि के आरम्भक्रम, स्वर्ग, अपूर्व, देवता आदि की सिद्धि आप्तवचन से होती है।

* नव्यन्याय में सम्बन्ध को सप्रतियोगिक पदार्थ कहा गया है अर्थात् सम्बन्ध का एक प्रतियोगिन् और एक अनुयोगिन् होता है। जिस सम्बन्ध का जो प्रतियोगिन् होता है वह उसी सम्बन्ध से अनुयोगिन् में रहता है तथा जो जिस सम्बन्ध का अनुयोगिन् होता है वहाँ उसी सम्बन्ध से प्रतियोगिन् रहता है। यहाँ कर्ता और क्रिया के बीच सम्बन्ध का 'कर्ता' अनुयोगिन् तथा 'क्रिया' प्रतियोगिन् है। (न. न्या. भा. प्र., उज्वला झा द्वारा आङ्ग्लानुवादसहित)

सन्दर्भ

1. सां.त.कौ. 4
2. स. बो. 4
3. सां.त.कौ. 4
4. सा. बो. 4
5. वही 4
6. गौ. पा. भा. 4.
7. सां.त.कौ. 5
8. सां.का. 4
9. सां.त.कौ. 4
10. सां.का. 5
11. सां.त.कौ. 5
12. वही
13. सां.त.कौ. 5
14. सां.त.कौ. 27
15. सां.त.कौ. 30
16. सां.का. 30
17. सां.त.कौ. 30
18. वही
19. वही 31
20. सां.का. 31
21. वही 5